तृतीय प्रकरण

भाव पक्ष

रस तत्व : भाव या रस की दृष्टि से ठाकुर में शृंगार भावना या शृंगार रस की प्रधानता है। शृंगार रस के विवेचन के पूर्व रस तत्व विचारणीय है। रीति गुण ध्वनि-अलंकार आदि अनेक सम्प्रदायों के होते हुए भी रस सम्प्रदाय का विशेष महत्व है। साहित्य दर्पणकार की इस परिभाषा का बहुत सम्मान है -- वाक्यं रसात्मकं काव्यम्[1]। ध्वनिवादी भी रसध्वनि को मुख्य मानते हैं। मम्मटाचार्य ने काव्य की परिभाषा की है -- तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृति पुन: क्वापि[2]। गुणों की परिभाषा में उन्होंने गुण को रस का हेतु माना है --

> ये रसस्यांगिनोधर्मा: शौर्यादिय इवात्मन:।
> उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचल स्थितयो गुणा:[3]।।

जिस प्रकार आत्मा के शूरता आदि गुण होते हैं उसी प्रकार रस के उत्कर्ष को करने वाले धर्मगुण हैं। इनकी स्थिति अचल या नियत होती है।

रस की दार्शनिक व्याख्या भी प्राप्त है। ब्रह्म को ही रस कहा गया। रसो वै स: , रस ह्येवायं लब्ध्वानंदी भवति[4]। रस सिद्धान्त के आदि आचार्य भरत मुनि ने कहा -- विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रस निष्पत्ति:[5]। विभाव अनुभाव

---

१. साहित्यदर्पण -- प्रथम परिच्छेद
२. काव्यप्रकाश -- प्रथम उल्लास
३. काव्यप्रकाश -- अष्ठम उल्लास
४. तैत्तिरीयोपनिषद्
५. नाट्यशास्त्र

और व्यभिचारी भाव के संयोग से रस निष्पत्ति होती है । भरत मुनि के उक्त सूत्र में संयोग और निष्पत्ति शब्दों को लेकर बहुत विवाद चला । इस विवाद के फलस्वरूप चार आचार्यों से चार मत प्राप्त हुए । इनमें अभिनवगुप्त का मत सर्वमान्य हुआ । जिस प्रकार पृथ्वी में गन्ध है उसी प्रकार हमारे हृदय में वासनात्मक संस्कार सुप्त पड़े हुए हैं । जल सिंचन द्वारा जिस प्रकार पृथ्वी की गन्ध प्रकट होती है उसी प्रकार विभावादि का संयोग पाते ही हमारे सुप्त वासनात्मक संस्कार उद्बुद्ध होकर आनन्द उत्पन्न करते हैं । रस के आनन्द की उपमा ब्रह्मानन्द से की गई है --

सत्वोद्रेकादखण्ड स्व प्रकाशानन्द चिन्मय: ।
वेद्यान्तर स्पर्श शून्यो ब्रह्मा स्वाद सहोदर: ।।[१]

आचार्यों के अनुसार ९ ऐसे मुख्य भाव हैं जिनके जागृत एवं परिपुष्ट होने पर मन आनंद-मग्न हो जाता है । इनमें से प्रत्येक भाव के आधार पर एक एक रस की कल्पना की गई। शृंगार , हास्य , वीर , अद्भुत , रौद्र करुण, शान्त , बीभत्स एवं भयानक ये ही नव रस हैं । किन्हीं आचार्यों ने दसवां रस वात्सल्य रस भी माना है । वात्सल्य रस का स्थायी भाव 'स्नेह' है जो लोगों के प्रति प्रेम (रति) का ही एक भेद होने के कारण शृंगार रस के ही अन्तर्गत आ जाता है । भरत मुनि ने आठ ही रस का उल्लेख किया है। बाद में शान्त रस की भी कल्पना कर ली गई । इस प्रकार रसों की संख्या ९ है ।

आचार्य मम्मट के अनुसार निर्वेद शान्त रस का स्थायी भाव है -- 'निर्वेद स्थायि भावो स्ति शान्तो पि नवमो रस:[२] । 'पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार संसार की अनित्यता का अनुभव होने पर तथा विषयों से विरक्ति हो जाने पर जो निर्वेद होता है वही निर्वेद शान्त रस का स्थायी भाव है -- 'नित्यानित्य वस्तु विचार

---

१. साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३
२. काव्य प्रकाश, आठवां उल्लास

जन्मा विषय विरागाख्यो निर्वेद: गृह कलहादिजस्तु व्यभिचारी[१] । इस प्रकार आज तक रसों की संख्या ६ ही मान्य है ।

<u>शृंगार रस ही आदि रस है :</u> शृंगार (काम) सृष्टि का कारण और विश्व-प्रपंच का आधार है । पुराणों में मनु और श्रद्धा के योग से सृष्टि का प्रारम्भ माना गया है --

ततो मनु: श्राद्धदेव संज्ञयामास भारत ।
श्रद्धायां जनयामास दशपुत्रान् आत्मवान्[२] ।।

काम की व्यापकता का संकेत वेद में भी है --

कामो जज्ञे प्रथमं नैनं देवा
आपु: पितरो नमत्याम्
ततं स्वमसि ज्यायानं विश्वहादामहांस्ते
काम नम: इति करोमि[३] ।।

"हे काम, तूं सबसे प्रथम उत्पन्न होकर देव पितर और मर्त्य सबको प्राप्त हुआ । कोई तुमसे बचा नहीं । इसीलिए इस विश्व में तूं सबसे व्यापक एवं महान् है । मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं ।" सृष्टि उत्पत्ति के पहले मन की सर्वव्यापिनी बुद्धि का मूल तत्व काम प्रकट हुआ । गीता में भी कहा गया -- "धर्माविरुद्धो कामोऽस्मि भूतेषु भरतर्षभ[४] ।"

कामायनी में "रति" को अनादि वासना कहा गया है --

"जो आकर्षण बन हंसती थी
रति थी अनादि वासना वही[५] ।।"

---

१. रसगंगाधर

२. श्रीमद्भागवत

३. अथर्ववेद ६।२।१६

४. श्रीमद्भगवत् गीता ११।७

५. कामायनी --काम सर्ग

शृंगार रस की व्याख्या करते हुए साहित्यदर्पणकार ने लिखा है --

शृंग हिं मन्मथोद्भेदस्तदागमन-हेतुक:
उत्तम प्रकृति प्रायो. रस: शृंगार इष्यते[१] ।।

रस मंजरीकार सेठ कन्हैयालाल पोद्दार के अनुसार शृंगार यौगिक शब्द है । शृंग और आर -- इसके दो अंश हैं । शृंग का अर्थ कामोद्रेक और काम की वृद्धि है । आर शब्द ऋ.धातु से बना है । ऋ का अर्थ गमन है । गति का अर्थ यहां प्राप्ति से लिया जाता है । अत: शृंगार का अर्थ हुआ -- काम वृद्धि की प्राप्ति । डा० राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने शृंगार शब्द पर विचार करते हुए लिखा है -- "साधारण बोल चाल में कामदेव के अंकुरित होने को सींग निकलना कहते हैं । जब कोई व्यक्ति कुमारावस्था को पारकर युवावस्था में प्रवेश करने लगता है , तो प्राय: कहा जाता है , अब उसके सींग निकलने लगे हैं -- अथवा परिपक्वावस्था की प्राप्ति होने पर भी यदि कोई व्यक्ति साधारण सी बात नहीं समझ पाता है तो कहा जाता है --अब क्या तुम्हारे सींग पूंछ निकलेंगे । इस सींग निकलने से अभिप्राय उसके शरीर में यौवन चिह्नों और हृदय में शृंगारी भावों के उत्पन्न होने से रहता है[२] । काम का अर्थ आकांक्षा है , भोगेच्छा मात्र नहीं । इसीलिए भरत मुनि ने शृंगार को उज्ज्वल पवित्र एवं उत्तम कहा है ।

<u>शृंगार रस का विश्लेषण :</u> (१) स्थायी भाव -- शृंगार रस का स्थायी भाव रति है । साहित्यदर्पणकार ने कहा है --

अविरुद्धा विरुद्धा वा यं तिरोधातुमक्षमा: ।
आस्वादङ्कुर कन्दोऽसौ भाव: स्थायीति सम्मत:[३] ।।

अविरुद्ध अथवा विरुद्ध भाव जिसे छिपा न सकें और जो आस्वादङ्कुर अर्थात् आस्वादन रूप रस तथा आनन्द का मूल हो , वही स्थायी भाव है । दशरूपककार

१, साहित्यदर्पण -- परिच्छेद ३
२, रीतिकालीन कविता और शृंगार रस विवेचन , पृ० ८
३, साहित्यदर्पण -- परिच्छेद ३

ने लिखा है --

"विरुद्धैरविरुद्धैर्वा भावैर्विच्छिद्यते न यः ।
आत्म भाव नयत्याशु स स्थायी लवणाकरः[१] ।।

जो भाव विरोधी एवं अविरोधी भावों से विच्छिन्न नहीं होता है , अपितु विरुद्ध भावों को भी शीघ्र अपने में परिणत कर लेता है, उसका नाम स्थायी भाव है । उसकी स्थिति लवणाकर के समान होती है जो प्राप्त समस्त वस्तुओं को लवण बना देता है । भरत मुनि ने नाट्यशास्त्र में लिखा है --

"यथा नराणां नृपतिः शिष्याणां च यथा गुरुः।
एवं हि सर्व भावानां भावः स्थायी महानिह[२] ।।"

"जैसे मनुष्यों में राजा, शिष्यों में गुरु श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार सब भावों में स्थायी भाव श्रेष्ठ है"। जब जो स्थायी भाव उत्पन्न होता है तब वही रस की प्रधानता होती है । स्थायी भाव का उत्पन्न होना विभावाधीन है । स्थायी भाव की चार विशेषतायें हैं -- (१) वासना रूप में वर्तमान , (२) सजातीय एवं विजातीय भावों से नष्ट न होना , (३) अन्य भावों को अपने में लीन कर लेना एवं (४) विभाव अनुभाव तथा संचारी भावों के योग से परिपुष्ट होकर रस रूप हो जाना । जब रति स्थायी भाव-पूर्णतया पुष्ट और चमत्कृत होता है तब उसे शृंगार रस कहते हैं । रसगंगाधर के अनुसार स्त्री-पुरुष की एक दूसरे के विषय में जो प्रेम नामक चित्तवृत्ति होती है उसे रति स्थायी भाव कहते हैं । वही प्रेम यदि गुरु,देवता या पुत्र के विषय में हो तो व्यभिचारी भाव कहलाता है ।

२ - विभाव -- विभावः कारण निमित्त हेतुरिति पर्यायाः[३] । साहित्यदर्पण के अनुसार --"रत्याद्युद्बोधका लोके विभावाः[४] । "लोक में जो रति आदि के उद्बोधक हैं वे

---

१. दशरूपक ४।३४
२. नाट्यशास्त्र ७।८
३. वही, ७।४
४. साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३

ही काव्य और नाटक में विभाव कहलाते हैं । लोक में सीता आदि जो रामचन्द्रादि के रति के उद्बोधक हैं वे ही काव्य और नाटक में विभाव कहलाते हैं । सामाजिकों के हृदय में वासना रूप से अत्यन्त सूक्ष्म रूप में स्थित रति आदि स्थायी एवं व्यभिचारी भावों को ये ही विभावन अर्थात् आस्वाद के योग्य बनाते हैं । इन्हें रसोत्पादन के कारण ही समझना चाहिए । विभाव अन्तस् की प्रसुप्त भावनाओं को जागृत करते हैं । विभावों के दो भेद -- (१) आलंबन विभाव (२) उद्दीपन विभाव । जिसका आलंबन करके स्थायी भाव-रति आदि मनोविकार उत्पन्न होते हैं वे आलंबन विभाव कहते हैं । रति आदि मनोविकारों को जो दीप्त करते हैं , वे उद्दीपन विभाव कहलाते हैं । उत्पन्न स्थायी भाव को यदि उत्तेजना न मिले तो वह अनुत्पन्न के ही समान है। जल न मिलने से अंकुर नष्ट हो जाता है ।यदि उद्दीपन विभाव न हो तो स्थायी भाव तृण स्थान पर गिरी अग्नि की तरह शीघ्र ही शान्त हो जायेगा। आलंबन की चेष्टाएं उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आती हैं । शृंगार रस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं । सखा-सखी दूती आदि के अतिरिक्त ऋतु , वन , उपवन, निकुंज , एकान्त स्थान, चन्द्र चांदनी , भ्रमर कोकिल, गान वाद्य आदि उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत हैं ।

३ - अनुभाव -- अनुभावयन्ति इति अनुभावा: । जो स्थायी भावों का अनुभव कराने में समर्थ हों वे अनुभाव कहलाते हैं । अमरकोष के अनुसार -- 'अनुभावो भावबोधक: ।' अनुभाव , वास्तव में , शारीरिक चेष्टाएं हैं । इन्हीं के द्वारा रति आदि स्थायी भाव काव्य में शब्दों के द्वारा और नाटक में आश्रय की चेष्टाओं के द्वारा प्रकट होते हैं । अनुभाव रस उत्पन्न होने की सूचना भी देते हैं और रस की पुष्टि भी करते हैं।

अनुभाव चार प्रकार के होते हैं -- (१) सात्त्विक अनुभाव ,(२) कायिक अनुभाव , (३) मानसिक अनुभाव एवं (४) आहार्य अनुभाव (सात्त्विक अनुभावों की संख्या ८ है -- (१) स्तम्भ , (२) स्वेद, (३) रोमांच; (४) स्वरभंग, (५) कम्प, (६) वैवर्ण्य , (७) अश्रु , (८) प्रलय । मनोभावों के अनुसार आंख, भौंह , हाथ आदि शरीरांगों द्वारा की गई कटाक्षादि चेष्टाओं को कायिक अनुभाव कहलाते हैं । मनोभावों के अनुसार हर्ष विषादादि की जो तरंगें उठती हैं, उन्हें मानसिक अनुभाव कहते हैं । तरह-तरह के वेशधारण को आहार्य अनुभाव कहते हैं । शृंगार रस में प्राय: सभी तरह के अनुभाव पाये जाते हैं ।

४ - हाव भाव : भाव मन में होते हैं । हाव वे भाव हैं जिनका कि भृकुटि-नेत्रादि द्वारा बाह्य व्यंजन होता है । नायिका आलंबन भी हो सकती है आश्रय भी । नायिका यदि आश्रय है तो हाव भी अनुभाव ही होते हैं । लेकिन आश्रय होते हुए भी वह नायक के लिए आलंबन हो जाती है । इसलिए हाव को भी उद्दीपन विभाव में गिनना चाहिए ।

५ - संचारी भाव : ये भाव स्थायी भाव में ही उत्पन्न होते हैं, उसके रसत्व में वृद्धि करते हैं, फिर उसी में विलीन हो जाते हैं । ये वारिधि में तरंग के समान हैं । एक ही संचारी भाव कई रसों में मिल जाता है इसलिए इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहते हैं । संचारी भावों की संख्या ३३ है । संचारी भावों के नाम ये हैं --

१. निर्वेद	१२. धृति	२३. स्वप्न
२. ग्लानि	१३. क्रीड़ा	२४. विबोध
३. शंका	१४. चपलता	२५. अमर्ष
४. असूया	१५. हर्ष	२६. अवहित्था
५. मद	१६. आवेग	२७. उग्रता
६. भ्रम	१७. जड़ता	२८. मति
७. आलस्य	१८. गर्व	२९. व्याधि
८. दीनता	१९. विषाद	३०. उन्माद
९. चिन्ता	२०. औत्सुक्य	३१. मरण
१०. स्मृति	२१. निद्रा	३२. त्रास
११. मोह	२२. अपस्मार	३३. वितर्क

उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्सा -- इन चार संचारी भावों को छोड़कर शेष २९ संचारी भाव शृंगार रस में होते हैं ।

६ - शृंगार रस के भेद -- शृंगार रस दो प्रकार का होता है -- (१) संयोग शृंगार, (२) विप्रलंभ शृंगार । प्रेम हो जाने के बाद जब नायक-नायिका एक दूसरे के दर्शन, स्पर्श, आलिंगन आदि में प्रवृत्त हों तब उसे अवस्था को संयोग शृंगार के भीतर लेते हैं। काव्य प्रकाशकार ने इस सम्बन्ध में लिखा है -- 'तत्र शृंगार रसस्य द्वौ भेदौ । संभोगो

विप्रलम्भश्च । तत्राद्य: परस्परावलोकना धर पान परिचुम्बनाद्यनन्तत्वाद् परिच्छेद्य एक एव गण्यते[१]। आचार्य मम्मट के इस कथन का आशय यह है कि सम्भोग शृंगार एक ही प्रकार का माना जाता है । क्योंकि यदि प्रेमी प्रेमिका के परस्पर दर्शन, आलिंगन, अधरपान, चुम्बन आदि दशाओं की गणना की जाय तो अन्त नहीं मिलेगा और इसके भिन्न-भिन्न रूपों का सम्यक् विश्लेषण भी न हो सकेगा । साहित्यदर्पणकार के अनुसार --

"दर्शन स्पर्शनादीनि निषेवेते विलासिनौ ।
यत्रानुरक्तावन्योन्य संभोगोऽयमुदाहृत: ।।
संख्यातुमशक्यतया चुम्बन परिरम्भण बहुभेदात्
अयमेक एव धीरै: कथित: संभोग शृंगार[२] ।।

चुम्बन, परिरम्भण आदि संयोग की अनेक दशाओं के कारण साहित्यदर्पणकार ने भी उनकी गणना के सम्बन्ध में असमर्थता प्रकट की है।--

विप्रलम्भ -- साहित्य दर्पणकार के अनुसार --

"यत्र तु रति: प्रकृष्टा
नाभीष्ट युपैति विप्रलम्भो सौ[३] ।"

अभीष्ट के समागम का अभाव विप्रलम्भ है । इसके ४ भेद हैं --(१) पूर्वराग (२) मान (३) प्रवास (४) मरण

प्रथम दर्शन द्वारा नायक-नायिका के परस्पर अनुरक्त होने पर भी किसी कारणवश मिलन न हो सके, उस स्थिति में दोनों के हृदय में जो प्रेमपूर्ण अधीरता रह जाती है , उसे पूर्वराग कहते हैं । प्रत्यक्ष दर्शन के ४ भेद हैं -- १. प्रत्यक्ष दर्शन, २. चित्र दर्शन, ३. स्वप्न दर्शन , ४. श्रवण दर्शन । साहित्यदर्पणकार ने पूर्वराग के तीन भेद किये हैं -- १. नीलीराग, २. मंजिष्ठाराग, ३. कुसुम्भराग । जो बाहरी

---

१. काव्यप्रकाश, उल्लास ८

२. साहित्यदर्पण, परिच्छेद ३

३. वही

चमक - दमक कम दिखावे पर हृदय से कभी दूर न हो , वह नीली राग है । जो चमक दमक दिखावे पर कभी नष्ट न हो, वह मंजिष्ठा राग है । जो चमक दमक भी कम दिखावे और शीघ्र नष्ट भी हो जाय , वह कुसुम्भराग है ।

पूर्वराग में भी विरह की दश दशाओं का वर्णन किया जाता है । वे दश दशायें ये हैं -- १. अभिलाषा ४. गुण कथन ७. उन्माद
२. चिन्ता ५. उद्वेग ८. व्याधि
३. स्मरण ६. प्रलाप ९. जड़ता
१०. मरण ।

नायक-नायिका के पारस्परिक प्रणय कलह का फल मान है । इसके दो भेद हैं -- १. प्रणय मान , २. ईर्ष्यामान । कभी-कभी प्रेम में एक विशेष स्वाद लेने के लिए प्रेमी जन मान करते हैं । इससे प्रेम में वृद्धि होती है । यह अकारण पैदा कर लिया जाता है । इस प्रकार का मान प्रणय मान है । नायक को पर स्त्री में आसक्त जानकर या सुनकर नायिका का क्रोध ईर्ष्या मान है । यह मान नायिका में ही होता है । नायिका को पर पुरुष में आसक्त जानकर प्रेमी पुरुष के मन में विशुद्ध क्रोध उत्पन्न होगा। मान की स्थिति की गम्भीरता को देखकर इसके तीन भेद किए गए हैं -- १. लघुमान २. मध्यम मान ३. गुरु मान । लघु एवं मध्यम मान तो मीठी-मीठी बातों से दूर हो जाते हैं, किन्तु गुरु मान में पैर छूने तक की स्थिति आ जाती है ।

प्रियतम के परदेश चले जाने पर उत्पन्न विरह प्रवास विरह कहा जाता है। प्रियतम के प्रवास के तीन कारण माने गये हैं -- १. कार्यवश, २. शाप वश ३. भयवश। समय के अनुसार कार्यवश प्रवास तीन प्रकार का होता है --

(१) भूत प्रवास (२) भविष्य प्रवास (३) वर्तमान प्रवास

जब मृत्यु आदि कारणों से नायक नायिका के मिलन की आशा नहीं रह जाती है तब वह विरह करुण प्रधान हो जाता है । वहां पर शोक स्थायी भाव की प्रधानता हो जाती है । जहां मिलन की आशा है या आशा न होने पर भी रति विमान है वहां विरह करुण विप्रलम्भ है । कुछ आचार्यों का कहना है कि मरण के

बाद भी मिलने की आशा रह जाती है । प्रेम का कभी अन्त नहीं होता। कादम्बरी में पुण्डरीक और महाश्वेता का आख्यान इसका उदाहरण है । वहां करुण विप्रलंभ है। सीता वनवास के पश्चात् राम का विरह भी करुण विप्रलम्भ ही है ।

शृंगार रस का रस-राजत्व : रसों का महत्त्व उनके स्थायी भाव , विभाव और संचारी भावों पर आश्रित रहता है । इस दृष्टि से शृंगार रस सबसे महत्वपूर्ण रस है । इसमें जितने अनुभाव और संचारी भाव आते हैं उतने किसी में नहीं । शृंगार रस का स्थायी भाव एक ऐसा भाव है जो जड़ चेतन सब में पाया जाता है । जगत के बहुविध कार्य व्यापारों के मूल में यही रति भावना विद्यमान है । दुनिया में विरला ही अकेला होगा। सबके पास कोई न कोई साथी है । जिसके पास यह 'जीवन संगी' नहीं है ,उसे जीवन में स्वाद नहीं मिलता । देखिए.--

'द फाउन्टेन्सुमिंगिल विद दि रीवर
दि रीवर्स विद दि ओशन
दि विंड्स आफ हेवेन मिक्स फार एवर
विद ए स्वीट इमोशन ।
नथिंग इन दि वर्ल्ड इज सिंगल
आल थिंग्स बाई ला डिवाइन,
इन वन एनदर वीइंग मिंगिल
ह्वाई आइ नाट विद दाइन।[1]

'झरने नदियों से मिलते हैं । नदियां समुद्र से मिलती हैं । आकाश में वायु एक मधुर भाव से प्रेरित होकर परस्पर मिले हुए हैं । दुनिया में कोई अकेला नहीं है । देवी विधान के अनुसार प्रत्येक वस्तु अपने किसी प्रिय से संयुक्त है'। शृंगार का देवता काम सौन्दर्य सौकुमार्य और संमोहन का देवता है । यह विश्वविजयी है --

काम कुसुम धनु सायक लीन्हें
सकल भुवन अपने बस कीन्हें[2] ।।

---

१. पी० बी०शेली--लव्ज फिलासोफी(गोल्डेन ट्रेज़री से)
२. रामचरित मानस -- बालकाण्ड

ब्रह्मा के मोहासक्त होने की कथा से यही संकेत दिया गया है कि मनुष्य की कौन कहे, आदर्श मानव अर्थात् देवता भी काम के आघात से बच नहीं पाता । देखिये --

मोह न अंध कीन्ह केहि केही ।
को जग काम नचाव न जेही ।।[१]

काम का प्रभाव अमोघ होता है । बड़े - बड़े योगियों का भी आसन डोल जाता है। युग-युग के समाधिस्थ भी संभल नहीं पाते, चूक जाते हैं । देखिये --

सूल कुलिस असि अंग बनिहारे ।
ते रतिनाथ सुमन सर मारे ।।[२]

जड़ वस्तुओं में भी काम की चेष्टाएं दिखलाई पड़ती हैं । देखिए --

जे सजीव जग अचर चर नारि पुरुष अस नाम ।
ते निज निज मरजाद तजि भए सकल बस काम ।।
सबके हृदय मदन अभिलाषा ।
लता निहारि नवहिं तरु साखा ।।
नदी उमंगि अंबुधि कहं धाई ।
संगम करहिं तलाब तलाई ।।[३]

काम की व्यापकता पर विचार करते हुए हरिऔध जी ने लिखा है -- इस प्रकार यदि हम आखें खोलकर देखें तो प्राणी मात्र ही नहीं अपितु पेड़, लता , बेलें , फूल , पत्ते -- सब जगह हम कामदेव और रति देवी का विहार स्पष्ट ही देखेंगे और वही रस रूप में शृंगार देव भी अपना प्रभाव विस्तार करते दृष्टिगोचर होंगे। वास्तव में बात यह है कि संसार में जो कुछ है वह सब अदृश्य रूप से एक दूसरे से ग्रथित है । यह सम्बन्ध मानव बुद्धि के परे भले ही हो किन्तु इस सम्बन्ध द्वारा कहीं ज्ञात और कहीं अज्ञात रूप से संसार का सृजनादि समस्त मंगलमूलक कार्य यथा समय होता रहता है[४] ।

---

१. रामचरितमानस , उत्तर काण्ड
२. वही, अयोध्याकाण्ड
३. वही, बाल काण्ड
४. रस कलश , पृ० ८५-८६

आत्म विस्तार की कामना ही सन्तानोत्पत्ति का मूल है । यह आत्म-विस्तार काम के द्वारा ही सम्भव है । इसके अतिरिक्त प्रेम मान में द्वैत में अद्वैत उपस्थित कर देने की अद्भुत शक्ति है । इसीलिए भक्त भगवान के सम्बन्ध के प्रतिपादन के लिये दाम्पत्य भाव प्रतीक रूप में लिया जाता है । रति या शृंगार में एक ऐसा माधुर्य है जिसके वश में होकर बड़े-बड़े हिंसक पशु थोड़ी ही देर के लिए सही -- अपनी हिंसा वृत्ति भूल जाते हैं । बड़े - बड़े विषधर रति के वश में होकर आत्म विस्मृत हो जाते हैं । आप उनको मार डालें तब भी वे परवाह नहीं करते । रति से जीवन की कटुता दूर हो जाती है । डा० नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में लिखा है -- 'शृंगार का स्थायी भाव रति या प्रेम है । आध्यात्मिक दृष्टि से स्त्री पुरुष का प्रेम पुरुष और प्रकृति की प्रणय लीला का प्रतिबिंब है । वह सृष्टि विकास की अनिवार्य आवश्यकता है । जीवन की स्फूर्ति , सद्प्रेरणाएं , भक्ति और धर्म , साहित्य और कला -- सभी के मूल मे प्रेमकी प्रेरणा है[१] । जीवन का सबसे बड़ा अभिशाप है अहंकार और अहंकार का अमोघ उपचार है प्रेम । मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रेम में मनोवृत्तियों के समीकरण की अद्भुत शक्ति है । इसी कारण यह आनन्द का पर्याय है । शृंगार के संयोग और वियोग -- दोनों पक्षों में क्रमश: मानव के सुखात्मक एवं दु:खात्मक -- सब भावों का समावेश हो जाता है ।

ठाकुर का शृंगार वर्णन :

(१). नखशिख वर्णन : काव्य में नखशिख वर्णन क्यों किया जाता है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए डा० नगेन्द्र ने लिखा है -- 'साधारणीकरण मुख्यत: आलंबन का ही होता है । अतएव शृंगार की आलंबन नायिका का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि वह सभी के रतिभाव की आलंबन हो सके[२] । यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि नायिका के रतिभाव के लिए नायक भी आलंबन है । इसलिए उसमें भी सौन्दर्य एवं शक्ति होना चाहिए जिससे कि नायिका के रतिभाव को जगा सके । नायक नायिका के रूप वर्णन की योजना काव्य में इसीलिए की जाती है । यह रूपवर्णन शृंगार रस का एक महत्वपूर्ण

---

१. देव और उनकी कविता -- डा० नगेन्द्र
२. रीतिकाव्य की भूमिका, पृ० १२४

अंग है। रीति काल में यह रूप वर्णन नखशिख वर्णन के रूप मे गाया जाता है। नखशिख वर्णन हिन्दी रीतिकाल की अपनी विशेषता है। नखशिख वर्णन पर विचार करते हुए पं० परशुराम चतुर्वेदी ने लिखा है -- 'नखशिख वर्णन की परम्परा वस्तुत: उन संस्कृत रचनाओं से आरम्भ होती है जिनमें भक्त कवियों ने अपने उपास्य देवों के प्रत्येक अंग का वर्णन भक्ति भाव से प्रेरित होकर किया'[1]। चतुर्वेदी जी पुन: कहते हैं -- 'नखशिख' शब्द में नख का ही पहले आना इस बात को सूचित करता है कि भक्तों ने अपने इष्ट देव को आराध्य या उपास्य की दृष्टि से देखा था जिससे उनका ध्यान सर्वप्रथम उनके चरणों ही की ओर गया'[2]।

नखशिख वर्णन रीति कालीन शृंगार सिद्ध कवियों की कविता का एक अनिवार्य धर्म बन गया था। रीतिबद्ध और रीतिमुक्त -- प्राय: दोनों तरह के कवियों ने नखशिख वर्णन किया है। यदि पद्माकर ने नखशिख वर्णन किया है तो घनानन्द ने भी। ठाकुर ने भी रूप वर्णन किया है। ठाकुर के नखशिख वर्णन की विशेषता यह है कि उनका नखशिख वर्णन अधूरा है। उनकी दृष्टि लोचन, नासिका से होती हुई गोल कपोलों पर आकर ठिठक जाती हैं, नीचे नहीं आती। ठाकुर की दृष्टि उरोजों पर नहीं गई है। उरोज वर्णन घनानन्द के नखशिख वर्णन का सर्वस्व है। ठाकुर ने नायिका के कंठ, उरोज त्रिवली नाभि जघन आदि का वर्णन नहीं किया है। उदाहरण देखिए --

> उरझी नहिं केतो उपाइ कियो उरझी हुती घूंघट खोलन पै।
> अधरान पै नेक खगी ही हुती अटकी हुती माधुरी बोलन पै।
> कवि ठाकुर लोचन नासिका पै मंडराइ रही हुती डोलन पै।
> ठहरैं नहिं डीठि फिरैं ठिठकी इन गोरे कपोलन गोलन पै[3]।।

ठाकुर के रूप सौन्दर्य की दूसरी विशेषता यह है कि उन्होंने सौन्दर्य वृद्धि के लिए कृत्रिम आभूषणों की योजना नहीं की है। सौन्दर्य स्वयं आभूषण है। रीतिकाल के कवियों ने आभूषण को सौन्दर्य का पर्याय मान लिया था। किन्तु ठाकुर ने कहीं

१, मध्यकालीन शृंगारिक प्रवृत्तियां तथा नव निबन्ध, पृ० ३२
२, म० शृं प्र० तथा न० नि०, पृ० ३२, पाद टिप्पणी
३, ठाकुर ठसक, छन्द सं० ३५

भी आभूषणों का उल्लेख नहीं किया है । एक स्थान पर नथुनी की मोतियों का संकेत किया है --

छोटी नथुनी बड़े मुतियान बड़ी अंखियान बड़ी मुधरे हैं[१]।

तीसरी विशेषता यह है कि ठाकुर ने पुरुष सौन्दर्य का भी वर्णन किया है। पुरुष सौन्दर्य के वर्णन के अभाव में कवि का वर्णन अधूरा है । प्रत्येक साहित्य में पुरुष सौन्दर्य वर्णन का प्राय: अभाव है । इसका कारण या तो यह है कि स्त्री पुरुष की अपेक्षा अधिक सुन्दर है या यह हो सकता है कि अधिकांश कवि पुरुष हैं। पुरुष के सौन्दर्य वर्णन में रस नहीं मिलता । ठाकुर का पुरुष सौन्दर्य वर्णन देखिये--

कैसो पीत पट बागे छोर छहरत जात
उलटि मुरलि लौसे कर झलकानो सो ।
लटपटे पेंचन की बांधे अटपटी पाग
नटखटी नंद को निकाइन निकानो सो।।
ठाकुर कहत हित हाँस अभिलाषन सों
चित को विसारि चित चारु चकवानो सो।
लेखु धन्य मांग सोभा सुखन विशेष देख
गोरी को गुविंद फिरै देखत दिवानों सो[२]।।

ठाकुर के रूप वर्णन की चौथी विशेषता यह है कि उन्होंने नेत्र एवं कटाक्ष का विस्तृत वर्णन किया है। मीन मृग गन कंज जैसे पुराने उपमानों को अपनाकर भी नेत्र के सम्बन्ध में कही गई ठाकुर की यह उक्ति नवीनता से खाली नहीं है --

डीलदार सीलदार लाज को अगार जिन्हें
तीछन मृगा से देखि देखि रहियत हैं ।
मीन और खंजन ते अलसे अनोखे देखे
कंज दलहूं ते ये विशेष चहियत हैं ।।
ललित ललौहें कसकौहें चसकौहें जान
ठाकुर कहत सुख पाइ रहियत हैं ।   क्रमश: - -

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ३३
२. वही, छंद सं० ६२

औरन के नैन कहा नैनन के लेखे आवै
ऐसे नैन होंय तब नैन कहियत हैं[१] ।।

नीचे के छन्द में नेत्रों को 'बटपारी' कहा गया है। यह झूठी उक्ति है। सूर आदि ने भी इनको 'बटपारी' कहा है।

ये हैं हियधार के कदीम दरवान दोऊ
इन्हें छिपाय कैसे ऊपरो लयो है री।
हाँ तो इन दोउन के रहन भरोसे हाय
वारो लैत सायो उलट भयो है री ।।
ठाकुर कहत बूझे आंसू भरि भरि लैत
नैकहू न सोध देत कौन को दयो है री।
मेरो मन मेरो आलो मोहि यह जानो जात
नैन बटपारन के भेद में गयो है री[२] ।।

नेत्रों के अतिरिक्त ठाकुर ने कटाक्ष के प्रभाव का वर्णन किया है --

तान लगै तरवारि लगै बरछी हु लगै लगै तीर अन्यारो।
वज्र को घाव लगे तो जिये औ जिये विष खाउ पिए मतवारो।।
ठाकुर जीवन सर्प डसो अरु जीवत है नरसिंह विदारो।
काल ग्रहे पै जिये जु जिये न जिये इक नैन कटाक्ष को मारो[३] ।।

कटाक्ष की चोट बड़ी अद्भुत होती है। इस चोट की कोई औषधि नहीं। कोई उपचार नहीं। किस स्थान पर चोट लगी -- इसका भी पता नहीं। चोट करने वाला भी सकुशल नहीं। इस बांके नैन बान का प्रभाव देखिए --

बांके नैन बान मारि घायल कियो री मोहिं
दायल दगा के देत हाय जिन्हें गाइए।
ए री वीर प्रीति को न दूसरो तबीब कोऊ
जाके द्वार धाय जाय दरद सुनाइए ।। क्रमशः- -.

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० २७
२. वही, छंद सं० ३८
३. वही, छंद सं० २८

ठाकुर कहत कहूं चोट को न चिन्ह कछु
बिन देखे नैन चैन पलहू न पाइए ।
एक जागा होय तहां औषधि लगाऊं वीर ,
रोम रोम पीर कहां औषधि लगाइए[१] ।।

(२) पूर्वराग वर्णन : संयोग और वियोग -- इन दोनों से अधिक विस्तृत ठाकुर का पूर्वराग वर्णन है । अन्य कवि दो एक छन्दों में पूर्वराग का वर्णन करके संयोग वर्णन पर आ जुटे हैं । ठाकुर पूर्वानुराग वर्णन में डट गये हैं । राधिका नामक बालिका के शरीर में शैशव अभी अभी गया है कि यौवन की मादकता ने घेर लिया। उसके नेत्र कृष्ण नामक एक युवक के नेत्रों से लड़ जाते हैं । उस समय से उसके भीतर खलबली मच जाती है । नींद नहीं आती । रात रात भर आंखें खुली ही रह जाती हैं । बार बार उस सांवले युवक को देखने की इच्छा होती है । जब किसी मुख से उस युवक का नाम सुनती है तब उसके चरण जहां के तहां रुक जाते हैं । दिनरात आंखों पर वह अपरिचित नाचता रहता है । जिस रास्ते से वह जाता है , दृष्टि जाकर उसी रास्ते पर चक्कर काटती है । उसी बालिका के मुख से उसकी दशा का वर्णन सुनिए --

"ठाढ़े रहे घनस्याम उतै इत मैं पुनि आनि अटा चढ़ि झांकी।
जानती हौ तुमहूं बज्र रीति न प्रीति रहै कबहूं पल ढांकी ।।
ठाकुर कैसे हूं भूलति नाहिंनै ऐसो अरी वा विलोकनि बांकी।
भावत ना छिन भौन को बैठिबो घूंघट कौन को लाज कहां की[२] ।।

इस अपरिचित से मिलने की आकांक्षा मन को मथ रही है । लेकिन बालिका क्या करे ? जब वह युवक सामने पड़ जाता है तब आंखें लज्जा के कारण झुक जाती हैं। अभी तो कोई बात-चीत भी नहीं हुई है । मिलने की बात तो बहुत दूर है --

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ३१
२. वही, छंद सं० ५८

घर बाहर पास परोस के वैर अकेले कबै करपैयत है ।
मग मांझ लजात मिले सजनी तो विलोकत चित्र डरैयत है।।
कह ठाकुर भेंटिवे के उपचार बिचारत धांस वितैयत है ।
बतिया न बनै जिनसों कबहूं छतिया तिन्हें कैसे लगैयत है ।।[1]

राधा नामक इस प्रेमी बालिका के मन में कभी-कभी यह भी विचार आता है कि मैं ही मोहन के लिए मर रही हूं या मोहन भी मेरे सम्बन्ध में कुछ सोचते हैं । इसके लिए वह एक ज्योतिषी का स्वागत करती है और उनसे प्रश्न पूछती है --

को हौ? ज्योतिषी हैं, कछु जोतिषै विचारत हौ,
ये हो शुभ धाम काम जाहिर हमारो है ।
आओ बैठ जाओ पानी पियौ पान खावो फेर
होय कै मुदित नेक गणित निकारो तो ।।
ठाकुर कहत प्रेम नेम को परेखो देखि
इच्छा को परीक्षा भली भांति निरधारो तो।
मेरो मन मोहन सों लागत है भांति भांति
मोहन को मेरो मोसों लागि है बिचारो तो[2] ।।

ज्योतिषी जी की गणना सन्तोषजनक ठहरती है --

जोतिषी बिचारि कहै राधिका जू सुनो बात
मोको गति जानि परे तेरे निज श्याम की।
डोलत हो खोर खोर हेरत तिहारी ओर
तेरो बोल सुनै गैल भूलि जात धाम की ।।
ठाकुर कहत काम काज ना सोहात कछु
बाढ़ो रस प्रेम भूलो बातें सबै जाम की ।

क्रमश: - -

---

१. ठाकुर ठसक -- छंद सं० ६१
२. वही, छंद सं० ६३

जैसी रट ताहि लगी राधे स्याम सुन्दर की,
तैसी रटि वाहि लगी राधे तेरे नाम की[१] ।।

स्त्री हो या पुरुष -- कोई भी अपने प्रेम की छांह तक नहीं देना चाहता है। कृपण के धन की तरह वह छिपाए रहता है। दुनिया के सामने अपने प्रेमी व्यक्ति से वह अपरिचय प्रकट करता है। राधा कृष्ण के सम्बन्ध में अपनी एक सखी से पूछती है --

यह को है कहां को न जानिए चोन्हिए निचहिं मो-मग घेरत है।
व्रज में यह रीति कुरीति चली यह न्याउ न कोऊ निवेरत है।।
नख ते शिख लौं तन ताकि रहै ए जु ऐसे कहा कोऊ हेरत है।
मुरली में छवै नाम सुनाय सबै मोहि राधिका राधिका टेरत है[२] ।।

प्रेमी बालिका अपने प्रेमी को कूंए पर खड़ा देखती है। कूंए तक पहुंचने का बहाना ढूंढती है। बहाना ढूंढने वाला बहाना पा ही लेता है। वह पड़ोसिन का घड़ा लेकर कूंए पर जुट जाती है --

यार हो जात लखी कुवना तब धीरज नेकु नहीं धरती है।
आपनी देखि घिनौंहो भरी मिस ठानि परायो कहो करती है।।
ठाकुर मानत नांही कहो घर जात पराए नहीं डरती है।
रीति को रीसन आपनि हौं सनि पानी परोसन को भरती है[३] ।।

अब दोनों में बात-चीत होने लगी। प्रेमी बालिका अपने प्रेमी की दर्शन-प्रार्थी होने लगी। प्रार्थना देखिए --

रीझै न आपर जो मनमोहन तो यहनेकु मतो सुन लीजिए।
प्रान हमार तुम्हारे अधीन तुम्हैं बिन देखे जु कैसे के जीजिए।।
ठाकुर लालन प्यारे सुनो विनती इतनी पै अहो चित दीजिए।
दूसरे तीसरे पांचवें सातवें आठवें तो भला आइबो कीजिए[४] ।।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद संख्या ६४
२. वही, छंद सं० ६५
३. वही, छंद सं० ५०
४. वही, छंद सं० ४८

प्रेम करने वालों का साहस ज्यों-ज्यों बढ़ने लगता है त्यों-त्यों प्रेम की स्थिति गम्भीर होने लगती है। देखिए राधा का साहस --

ऐसे कहा कबौं कारज होत है जो मगमांझ कबौं दरसाने।
वे दिन ऐसे ही बीतत हैं हमहूं तरसी तुमहूं तरसाने ।।
ठाकुर और विचार कछू नहिं ये अभिलाष हिये हरसाने।
कै हमकौं बरिए नंदगांव कै आपुही आइ बसौ बरसाने[1] ।।

प्रेम गुप्त नहीं रह पाता। दुनिया जान लेती है। जान लेने पर वह प्रेमियों का विरोध करने लगती है। उनका उपहास करती है। उन्हें समाज से बहिष्कृत कर देती है। उन्हें चरित्रहीन घोषित करती है। लेकिन यह सब होते हुए भी किसी सच्चे प्रेमी ने इसकी परवाह नहीं की। वे आगे बढ़ते गये और समाज की बेड़ी पीछे-पीछे दौड़ती गई। वह बेड़ी उनको छू नहीं पाई। वे स्वर्ग में जाकर अपनी प्रेमिका के गले लग गये और समाज की बेड़ी समाज के पास लौट आई। राधा नामक वह प्रेमी बालिका भी समाज को चुनौती देती है --

घर ही घर घेरु घरै घर हाथनै, नाव धरैं सब गांवरी री।
तब खोल दै हूँ बदनाम कियो अब कौन को लाज लजावरी री।
कवि ठाकुर नैन सौं नैन लगै अब प्रेम सों क्यों न अघावरी है।
अब होने दै बैर विसैरी हंसी हिरदय बसे मूरति सांवरी री[2] ।।

पूर्वराग के भीतर व्याधि जड़ता आदि दशाओं का भी समावेश ठाकुर ने किया है। देखिए --

जब तें विलोकि गई रावरो बदन लाल
तब तें अचेत सी वियोग भार झुरई।
हेम सी, लता सी, चपला सी, चारु चांदनी सी
मदन सताई पै न मैं जनाई मुरई[3] ।।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ४४
२. वही, छंद सं० ४२
३. वही, छंद सं० ८५

पूर्वराग के भीतर केवल नायिका पक्ष को ही नहीं नायक पक्ष की भी व्याकुलता का वर्णन ठाकुर ने किया है । देखिए --

का कहि बाल गोपालहि बोधहि तो दृग बान श्मान लगे री।
तो हित प्यारी भए बदनाम श्राम बिसार दिए घर के री।।
ठाकुर तूं न तऊ पिघली पग धारि है लालन लाल पनेरी ।
प्रीतम की सु भई गति या छतिया कपको न कसाइन तेरी [१] ।।

पूर्वराग की स्थिति में दिनरात दर्शन की अभिलाषा बनी रहती है । देखिए --

का कहिए कोई पौरष नाहिने ताते हिए की जतैयत नाहीं।
मानन मेटि भई कबहूं सु घरोकु बिलोकि अघैयत नाहीं ।।
ठाकुर या नर नौंद की डर ताते घरी दर अहयत नाहीं।
मैंटन पैगत कैसे तिन्हें जिन आंखिन देखन पैयत नाहीं [२] ।।

इस प्रकार स्पष्ट मालूम हो रहा है कि ठाकुर का पूर्वराग वर्णन पूर्ण और हृदयग्राही है ।

संयोग वर्णन : संयोग वर्णन के भीतर नायक नायिका के परस्पर दर्शन से लेकर संभोग क्रिया तक की सब बातें आ जाती हैं । संयोग काल में ऐन्द्रियता की प्रधानता रहती है । दर्शन , प्रणय वार्ता , स्पर्श , चुम्बन , आलिंगन , संभोग आदि इसकी विविध दशाएं हैं । विरह की दश दशाओं की तरह आचार्यों ने इसकी विविध दशाओं की कोई गणना नहीं की है । ठाकुर का संयोग वर्णन संकेतात्मक है । उन्होंने आलिंगन चुम्बन नखक्षत एवं संभोग क्रिया आदि का वर्णन नहीं किया है । संयोग का एक चित्र देखिये --

राधिका स्याम लसे पलका पर कापर जाति कहो छवि छाल की।
आपने हाथ से मावलो लैकर प्रीति से आंजुरी जोरी गुपाल की ।।
ठाकुर तापे धरी मुख बाल ने को बरने उपमा वहि काल की ।
पानन में तिय आनन यों दिये चन्द चढ़ो मनो कंज की नालकी [३] ।।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ८६
२. वही, छंद सं० ७१
३. वही, छंद सं० ४०

राधिका श्याम एक ही पलंगों पर विराजमान हैं । राधिका कृष्ण की अंगुलि में अपना मुख रख देती हैं । इस प्रकार ठाकुर ने रति सम्बन्धी उल्लास का वर्णन किया है ।

नीचे के छन्द में दृष्टि संभोग का वर्णन देखिए --

अपने अपने सुठि गेहनें में चढ़े दोऊ सनेह की नाव पै री ।
आनान में भीजत प्रेम भरे समयो लखि मैं बलि जाऊं पै री।।
कवि ठाकुर दोउन की रुचि गों रंग द्वै उमड़े दोउ ठांव पैरी।
सखी कारी घटा बरसे बरसाने पै गोरी घटा नन्दगांव पै री।।

जीवन की दौड़ धूप में ठाकुर के संयोग चित्र बड़े मधुर बन गये हैं । होली की भीड़ में कृष्ण ने एक गोपी के कुच का स्पर्श कर लिया। वह गोपी अपनी सखी से इस सुखद अनीति की चर्चा करती है । उसकी सखी उत्तर देती है --

ठाकुर कहत ऐसे रस में निरस होत
कहा भयो छाती जो छबीले छुई चोरी में ।
अंक भरि लीनी तो कलंक को न संक कीजै
आज बरजोरी को न दोष होत होरी में[1]।।

एक दूसरी गोपबाला इतनी प्रेमातुर हो गई कि अपने को रोक न सकी। उसने अनर्थ कर दिया । भरी भीड़ में --

रंगभरी रसमातीगुवालि, गोपालहिं ले गिरी केसर कीच में[2]।

वियोग वर्णन -- विरह की ४ कोटियां हैं -- पूर्वराग,मान , प्रवास एवं मरण। पूर्वराग के वर्णन के सम्बन्ध में अभी ऊपर विचार किया जा चुका है। ठाकुर ने मान-जनित विरह का वर्णन किया है । देखिए --

आगी बीच देखे कहूं दारुगंज दाबे जात
पानी बीच देखे कहूं मीन जीजियतु हैं ।
काम बीच देखे कहूं काम गों वियोग होत
लोक बीच देखे कहूं जोग कीजियतु है ।। क्रमशः- -

---

१. ठाकुर ठसक , छंद संख्या ९८
२. वही, छंद संख्या ९४

ठाकुर कहत प्यारी तुमही विचारि लखो
ऐसो रूप पाइ कहूं मान कीजियतु है।
पीठ दैके बैठती हो पीठ हूं पै बेनी परी
बेनी बीच दैके कहूं पीठ दीजियतु है[1]।।

ठाकुर ने प्रवास जन्य विरह का वर्णन किया है। प्रिय के अभाव में सम्पूर्ण विश्व सूना लगता है। देखिए --

का कहिए परी नेह अधीन रिसान दे लोग रिसानोई सो है।
और कहा कहिए करि लेन दे नाम बुरो तो बखानोई सो है।।
ठाकुर याकी है मोहि प्रतीति सो वैर सबै रिस मानोई सोहै।
वा घनश्याम अकेले बिना सिगरे ब्रज बीर बिरानोई सो है[2]।।

विरह की अग्नि में चुम्बन आलिंगन संभोग आदि की स्थूल कामनाएं जल जाती हैं। केवल एक कामना रह जाती है और वह है प्रिय के दर्शन की कामना। ठाकुरकी काव्य विरहिणी भी उसी दर्शन के लिए आकुल है --

जिन लालन चाह करी इतनी तिन्हें देखिवे के अब लाले परे[3]।

प्रिय जो कुछ करता है, अच्छा ही करता है। उसके कार्यों को बुरा कहने की इच्छा नहीं होती। वह स्वतन्त्र है, जो कुछ करे।

सोहत है तुमको सबही सु भले जू भले लला आपु भली करी[4]।

विरहिणी दिन रात चिन्ता में पड़ी रहती है। वह सोचती है कि मुझसे कोई अपराध हो गया है जिसके कारण प्रियतम रुष्ट हैं। नहीं आ रहे हैं --

कौन गुनाह परो हमसों अबलों घनस्याम निहोरितु है[5]।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ७०
२. वही, छंद सं० ७१
३. वही, छंद सं० ६८
४. वही, छंद सं० ७५
५. वही, छंद सं० ७७

'स्मरण' की दशा देखिए --

दिन बीसक तीसक ते यह खोर ह्वै धेनु उबेरत ही नहियां।
फिर कुंज के भौन बजाइके बांसुरी प्यारी को टेरत ही नहियां।।
कह ठाकुर सोच हतो चित को इत को पग फेरत ही नहियां।
यहि ओर सनेह की आंखिन सों अब तो हरि हेरत ही नहियां[1]।।

विरहिणी कह रही है कि दुःख का ऐसा अनुभव जीवन में कभी नहीं हुआ था --

दहने परी देह वियोग विथा अब आजु लों काहू दही नहियां।
कहने परी लाजहिं छाड़ि इती जिती कौन हूं ठांव कही नहियां।।
कवि ठाकुर लाल अबाहि करी तिहि तो सहिए जु सही नहियां।
मन मोहन को हिलवो मिलवो सपने लौं भयो हमरो गुइयां[2]।।

वियोग में पड़े हुए कभी कभी विरहिणी को अपने प्रेमी के प्रेम के प्रति अविश्वास होने लगता है। हमारा प्रेमी हमको नहीं चाहता है -- यह बात मन में आते ही आंखें ढंप जाती हैं --

कवि ठाकुर का तिनसों कहिए करि नेह निवाहत ही नहियां।
अब जान परी इनकी, हमको हमको हरि चाहत ही नहियां[3]।।

विरह में विरहिणी का मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। बैठे बैठे उसे मालूम होने लगता है कि मेरा प्रिय अभी अभी इसी रास्ते से गया है। वह खड़ी हो जाती है। इधर-उधर देखकर चल पड़ती है। कुछ दूर जाकर घूम आती है। कभी तो अपने पास बैठी हुई सखी को ही दौड़ा देती है। इस प्रकार के उन्माद का चित्र देखिए --

सजनी कहा ठाढ़ि भई सुचिती चल देखिए कौन के गोहन गो।
वह बेनु बजाय रिफाइ हमैं अब धेनु कहूं वन दोहन को।।
कवि ठाकुर ऐसे ही जानि परी अरी गुंज के हारन पोहन गो।
कोऊ दौरियो फेरियो वा री अहीर को मोहन मो मन मोहन गो[4]।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ८३
२. वही, छंद सं० ७९
३. वही, छंद सं० ८२
४. वही, छंद सं० ८७

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि मनुष्य दिन में जिस प्रकार की चिन्ता करता है रात में उसी प्रकार का स्वप्न देखता है । नायिका स्वप्न में बाटिका में गई । कृष्ण ने उसे बाहों में भर लिया । लेकिन प्रात: उसकी नींद खुल गई कृष्ण बाग-बगीचा सब अदृश्य हो गये ।

साजने हौं फुलवाई गई हरि अंक भरी भुज कंठन मेली ।
हौं सकुची कोउ सुन्दरि देखति लै निज बांह सों बांह पकेली ।।
ठाकुर भोर भए गए नींद में देखहु तो घर मांझ अकेली ।
आंख खुली तब पास न सांवरो बाग न बावरो वृन्दा न बेली[१] ।।

विरहिणी को अपना जीवन बोझ सा लग रहा है । वह जीवन और मरण के बीच तड़प रही है --

मन भावन प्यारे गोपाल बिना जग जीजतु है पैन जीजतु है[२] ।

जब मनुष्य को कोई आश्वासन देने वाला नहीं मिलता तब उसका दु:ख ही उसे आश्वासन देता है --

काहे अरे मन साहस छाड़त काहे उदास ह्वै देह तजै है ।
वे गुन वे दुख आय चले गए एक सी रीति रही नहिं रहिहैं ।।
ठाकुर काको भरोस करौं हम या जग जालन भूलि न ऐहैं ।
जाने संयोग में दीन्हों वियोग वियोग में सो का संयोग न दीहैं[३] ।।

मन के भीतर ही भीतर वह प्रिय को उपालंभ देती है --

काठ ते स्ते कठोर भयो जाइ वा दिन कोरे हुते मधु माखन ।
बातें बनाइ कहैं डरकैं मिलकै बिछुरैं उड़िकै बिन पांखन ।।
ठाकुर वे न सदेस लिखैं चलि आवत हैं उतते नर लाखन ।
जु कियो बदनाम सबै वृज में अब आंखि लगाय दिखात न आंखन[४] ।।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० ८७
२. वही, छंद सं० ७८
३. वही, छंद सं० ७२
४. वही, छंद सं० ८४

ठाकुर के काव्य में विरहिणी के कलेजे को शलांधा विभक्त करके बूर्वैदसाना नहीं खोला गया है। मांस नहीं भूना गया है। आंसू की जगह पर आंसू ही गिरे हैं, रक्त नहीं। इनका विरह वर्णन बिहारी के वर्णनों की तरह ऊहात्मक नहीं है। उसमें घनानन्द की तरह आध्यात्मिक आभास नहीं है। बिहारी की तरह ठाकुर ने आंसुओं का हिन्द महासागर नहीं खड़ा किया है। उसमें जहाज नहीं चलाए गए हैं। जाड़े में नायिका के कलेजे पर बर्फ के टुकड़े नहीं रक्खे गये हैं। विरहिणी की आग से चूल्हा नहीं जलाया गया है। ठाकुर की विरहिणी में प्रेम की पीर है, छटपटाहट है, तड़पन है। देखिए--

बरुनीन में नैन फुकैं उफकै मनो खंजन प्रेम के जाले परे।
दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अंगुरीन के पोरन छाले परे।।
कवि ठाकुर ऐसी कहा कहिए निज प्रीति करे के कसाले परे।
जिन्ह लालन चाह करी इतनी तिन्हैं देखिवे के अब लाले परे[1]।।

वसन्त का वैभव, पावस की घटा, प्रकृति की श्री -- ये सब वियोगिनी के विरहानल के लिए घृत हैं। इन उपादानों से विरह की अग्नि भभक उठती है --

बौरे रसाल की चरि डारन कूकत कोकिला मौन गहे ना।
सीतल मंद सुगंधित वीर समीर लगे तन धीर रहे ना।।
ठाकुर कुंजन पुंजन गुंजरत भौंर को भीर चुपैवो चहै ना।
व्याकुल कीन्हों वसन्त बनायके जाय के कंत सों कोउ कहै ना[2]।।

ठाकुर की गोपियां बड़ी मुखर हैं। वे नारी स्वभाव के अनुसार बात-बात में लोकोक्तियों का प्रयोग करती हुई अपनी स्थिति की व्यंजना करती हैं। वे कहती हैं -- हे ऊधव। कृष्ण हम लोगों को गुलाम की गाजर समझ लिए थे। कुछ खाकर, बहुत कुछ बहा कर चल दिए --

खेत कुटुम्ब ते लीन्हें ~~उखारि~~ उरवारि नवेर नवेर के स्वाद नवीनी।
फेर दुरे दुरे खाइ अघाय रुची न रुची की जनाय न दीनी।।

क्रमश: --

---

1. ठाकुर ठसक, छंद सं० ६१
2. वही, छंद सं० १५३

ठाकुर यों कहती ब्रजबाल सों ऊधो सुनो या कथा रस भीनी।
खाई कछू बगराई कछू हरि गोपी गुलाम की गाजर कीनी [१]।।

विरहिणी बार बार सु सिर धुनती है कि मैंने प्रेम क्यों किया ? यदि प्रेम न करती तो यह संकट न आता --

यों हि लुभानों पत्यानो लखे छवि देखि डरानो नहीं रंग कारे।
रंगी रंगी रति के रंग में घर बाहिर लोग सिखे सब हारे ।।
ठाकुर वाको हई फल पैयत वासर रैन अनन्द बिसारे ।
ऊधो जू दोष तुम्हें न कछु उन्हें हम आजुही नाव में पाथर पारे [२]।

कृष्ण चढ़ती जवानी में गोपियों को छोड़ कर चले गये थे और अब जवानी ढलने का समय आ गया --

का कहिए कहिबे को नहीं मग जोवत जोवन जो गयो है।
उन तो रत पार न लाई कछू तन ते वृथा जोवन खो गयो है [३]।

गोपियां कहती हैं कि पराए पिया किसी के नहीं होते --

अपने नहिं होत पराए पिया यह जानत मैं अरु वेदन गाई ।
सो अब देखिके प्रीति करी गुरु लोगन की कुलरीति गंवाई।।
ठाकुर ते न भए अपने अब कौन को दोस लगाइए माई ।
दूध की माखी उजागर वीर सुहाइ मैं आंखिन देखत खाई [४]।।

ठाकुर के ऊधव बड़े ही सहृदय हैं । वे ब्रज में पहुंचते हैं । तुरंत गोपियों की भीड़ लग जाती है । सब अपनी अपनी बातें कहने के लिए आतुर हो उठती हैं । हे ऊधव ! हे ऊधव ! के संबोधन शब्दों से सारा वातावरण शब्दायमान हो जाता है । ऊधव मौन होकर सबकी बातें सुन लेते हैं और लौट आते हैं । आकर श्री कृष्ण से कहते हैं --

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० १५३
२. वही , छंद सं० १८१
३. वही, छंद सं० १६८
४. वही, छंद सं० १७०

बाजु जुरी बिजुरी सी कितेक प्रेम प्रवाह कथा तिन बांची ।
ऊधो सुनो तुम ऊधो सुनो तुम उधो सुनो तुम या धुनि मांची।।
ठाकुर कौन पो का कहिए गति देखि के पेगी गिरा तहं नाची ।
हां इतनो कहबोइ परे हमे सांची हैं साची हैं सांची हैं सांची [1] ।।

इस प्रकार स्पष्ट हुआ कि ठाकुर की विरह व्यंजना सोलहो आना स्वाभाविक है । उसकी मार्मिकता कहीं खण्डित नहीं हुई है ।

भक्ति भावना : देव, पद्माकर , सेनापति आदि रीतिकालीन कवियों की तरह ठाकुर में भी भक्ति भावना मिलती है । ठाकुर ने गणेश की वंदना की है --

प्रणव प्रसिद्ध आदि मंगल महोदधि सों
जोड़ उर ध्यावैं तासु वेषु रखवारो है ।
बुद्धि को भंडार अवतार करतार हू को
विद्या को सिंगार सदा सुख देनवारो है।।
ठाकुर कहत महा छलियान छलिबे को
दु:ख दल दलिवे को दिग्गज दंतारो है ।
शंभु को दुलारो गिरिजा को प्राण प्यारो सदा
टेढ़ी सुंड़ वारो सोई साहेब हमारो है [2] ।।

ठाकुर ने कंपित स्वर में राम की वंदना की है --

राम मेरे पंडित अखंडित सुदिन सोधैं
राम मेरे गुरु जप मेरे राम नाम हैं ।
रामनाम गावतहिं राम नाम ध्यावतहिं
राम राम सोचत कटत आठो जाम है ।।

क्रमश: - -

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० १८४
२. वही, छंद सं० १

ठाकुर कहत साँची आस मोहि राम ही की
राम ही सों काम धनधाम मेरो राम हैं ।
राम मेरे वेद विसराम मेरो राम साँचो
राम मेरी औषद ज्ञान मेरे राम हैं[१] ।।

ठाकुर ने बाल कृष्ण के चरण की वन्दना की है --

कंजहुं ते कोरी जिन्हें बंदत महेस अज
लागें सबै पैया या गोविंद गमुवारे की[२] ।।

राधा के भी चरण की वंदना कवि ने की है --

पंकज वरण अशरण के शरण राधे
रावरे चरण सुख करन हमारे हैं[३] ।।

ठाकुर ने ईश्वर के ईश्वरत्व का गान किया है --.

मेवा वई घनी काबुल में विंदरावन आनि करील जमाए ।
राधिका सी सुभ बाम विहायकै कुबरी संग सनेह बढ़ाए ।।
मेवा तजी दुरजोधन की विदुराइन के घर छोकल खाए ।
ठाकुर ठाकुर की कौं कहों सदा ठाकुर बावरे होतइ आए[४] ।।

ठाकुर ने अपने कुछ छन्दों में हरिगुण गान का भी उपदेश दिया है --

(१) ठाकुर कहत व्रजचंद चंदमुखी राधा
वृन्दावन वीथिन मैं हरि गुन गाव रे ।
बीति जात उमर भंडार तन रीति जात
बीति जात काल के हवाले होत बावरे[५] ।।

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० २
२. वही, छंद सं० ३
३. वही, छंद सं० ४
४. वही, छंद सं० ८
५. वही, छंद सं० १६

(२) ठाकुर कहत कछू चित में विचारि देखो
गरब गरूरी के रखैया एक राम हैं ।
रूप सों रतन पाइ जोवन सों धन पाइ
नाहक गंवाइबो गंवारन को काम हैं[१] ।।

कुछ विद्वान रीतिकालीन कवियों की भक्ति को भक्ति का आभास कहते हैं । यह उचित नहीं है । मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि ये रीतिकालीन कवि सूर, तुलसी और मीरा हैं । शृंगार में आकंठ मग्न रहते हुए भी इनके जीवन में एक दिन ऐसा आया था जब कि दुनिया के राग रंग फीके लगने लगे थे । बुढ़ापा या मृत्यु के भय से ही नहीं, इनमें निर्वेद की भावना उत्पन्न होती थी और अपनी इस अनुभूति को वे छन्दबद्ध कर जाते थे । जीवन में घोर रसिकता में डूबे रहने पर भी जिस दिन निर्वेद की भावना जाती है और मनुष्य यह सोच लेता है कि मेरा पिछला जीवन व्यर्थ हो गया, उसी दिन उसकी उक्तियों में पवित्रता टपकने लगती है । रीतिकालीन कवियों के सम्बन्ध में यही बात है । देखिए --

प्रानन प्रेम की गांस नहीं नहिं कानन बांसुरी को सुर छायो।
बैनन सो न जप्यो नंदनंदन नैनन ना वृजचंद लखायो ।।
ठाकुर हाथ न मांस कहूं नहिं पाइन सों हरिमंदिर धायो।
नेकु कियो न सनेह गोपाल को देह धरे कहा फल पायो[२] ।।

ठाकुर में भी पद्माकर और सेनापति की तरह भक्ति की अभिव्यक्ति है । उस अभिव्यक्ति से उनके हृदय की पवित्रता का परिचय मिलता है । उसे भक्ति का आभास नहीं कहना चाहिए ।

---0---

---

१. ठाकुर ठसक, छंद सं० २२
२. वही, छंद सं० १३६